

हिन्दी साहित्य के विकास में जैन धर्म की भूमिका

डॉ. गीता कपिल,

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

वनस्थली विद्यापीठ

राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में अनेक प्रकार के रचनाकर और उनकी रचनाएं मिलती हैं। एक तरफ सिद्धों का साहित्य है तो दूसरी ओर नाथों का। इसी कड़ी में जैन साहित्य भी प्रभूत मात्रा में मिलता है। हिन्दी साहित्य की आधारपीठिका तैयार करने में इनका बड़ा योगदान है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी साहित्य के विकास में जैन धर्म की भूमिका पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

साहित्य के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि, “जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्बित होता है। तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।” अर्थात् साहित्य किसी भी देश और काल के मानव समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक स्थितियों का ही दिग्दर्शन नहीं कराता वरन् मानव समाज की मनःस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों का भी परिचायक होता है। हिन्दी साहित्य को आज हम विकास की जिस अवस्था में देखकर गौरव का अनुभव कर रहे हैं, उसे अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में देखकर, जबकि हिन्दी भाषा का स्वरूप भी निर्मित नहीं हुआ था, धर्म का पोषण प्राप्त हुआ। तदयुगीन साधु-सन्तों ने अपने धर्म का प्रचार के लिए जनभाषा का ग्रहण किया, जिससे कि उनका धर्म लोक के मध्य सहजता से ग्राह्य हो सके। इन

साधु सन्तों में बौद्ध अनुयायी, जैन साधक और नाथ पंथी प्रमुख थे। यद्यपि इनकी भाषा अटपटी और अविकसित थी, किन्तु यह सत्य है कि इन्होंने लेखन की परिपाटी आरम्भ करने में योगदान दिया।

हिन्दी साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय इन धर्म साधकों की धार्मिक और उपदेशात्मक कृतियों को साम्प्रदायिक कहकर खारिज कर देते हैं और उन्हें साहित्य की कोटि में नहीं रखते। “अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धार्मिक-तत्त्व निरूपण संबंधी जो कि साहित्य की कोटि में नहीं आती।” दूसरी ओर रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य के विकास में इन जैन साधकों के योगदान को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, “वास्तव में हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास में जैन धर्म का बहुत हाथ रहा है। अपभ्रंश में ही जैनियों के मूल सिद्धान्तों की रचना हुई। अपभ्रंश का विकास हिन्दी में होने के

कारण हिन्दी की प्रथमावस्था में भी इन सिद्धान्तों पर रचनाएँ हुईं। अतएव भाषा विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं वरन् हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का सूत्रपात करने में भी जैन साहित्य का महत्त्व है।”

डॉ.रामकुमार वर्मा के अतिरिक्त डॉ.नगेन्द्र, पं.चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि विद्वान भी हिन्दी को अपभ्रंश से विकसित और अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानते हैं। डॉ.नगेन्द्र का मत है कि, “अपभ्रंश अपने मूल रूप में ही पन्द्रह शताब्दी तक साहित्य की भाषा बनी रही, तथापि आठवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा पृथक होकर उसके समानान्तर साहित्य रचना का माध्यम बन गयी थी। इसी भाषा को कुछ विद्वानों ने उत्तर ‘अपभ्रंश’ या ‘पुरानी हिन्दी’ कहा है और कुछ विद्वानों ने ‘अवहट्ट’ नाम दिया है।” फिर वे आगे लिखते हैं कि “डॉ.भोला शंकर व्यास ने हिन्दी के आरम्भिक रूप को ही ‘अवहट्ट’ कहा है और यही अधिक समीचीन है क्योंकि जिसे कुछ विद्वान ‘अवहट्ट’ कहना चाहते हैं, वहीं अपभ्रंश का ऐसा रूप है जिसमें हिन्दी की सभी आरम्भिक प्रवृत्तियाँ एक साथ मिलती हैं।” गुलेरी जी का भी मत है कि “वैसे अपभ्रंश को ‘पुरानी हिन्दी’ कहना अनुचित नहीं।” यद्यपि गुलेरी का यह मत अधिकांश विद्वानों को मान्य नहीं हुआ। कहना चाहिए कि हिन्दी का प्रारम्भिक रूप अपभ्रंश का माध्यम बनाया। डॉ.रामकुमार वर्मा का मत यहाँ सार्थक प्रतीत होता है कि “अर्धमागधी और नागर अपभ्रंश से निकलने वाली भाषा हिन्दी के प्रारम्भिक रूप की छाप लिए हुए है।”

जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अपना धर्म प्रचार करने के लिए अपभ्रंश भाषा

को ही अपनाया। इसलिए जैन मुनियों ने भी अपभ्रंश भाषा में अनेकानेक ग्रंथों की रचना की। इन ग्रंथों में सत्य, अहिंसा, वैराग्य आदि नीति प्रधान विषयों की प्रमुखता है परन्तु “कुछ जैन कवियों ने हिन्दुओं की रामायण और महाभारत की कथाओं से राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने सिद्धान्तों और विश्वासों के अनुरूप अंकित किया है। इन पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त जैन महापुरुषों के चरित्र लिखे गये तथा लोक प्रचलित किये गये हैं।” डॉ.नगेन्द्र जैन साहित्य को विविध शैलियों में विकसित मानते हुए लिखते हैं कि जैन “कवियों की रचनाएँ आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं आचार शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है।...लोक जीवन में भी श्रीकृष्ण की लीलाओं के लिए ‘रास’ को प्रभावशाली रचना शैली का रूप दिया।” इस प्रकार जैन साधकों ने प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा। जो धार्मिक तो था, परन्तु उससे हिन्दी साहित्य लाभान्वित भी हुआ और प्रभावित भी हुआ।

हिन्दी के कवियों में स्वयंभू देव को प्रथम कवि माना जा सकता है। इनका समय सं. 734 से 1016 के मध्य निर्धारित किया गया है। ‘पउम चरित’ (पदम् चरित्र) नामक इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। जिसमें हिन्दी का प्राचीन रूप देखा जा सकता है। यह ग्रंथ जैन रामायण के नाम से जाना जाता है और इसी आधार पर स्वयंभू देव अपभ्रंश के वाल्मीकि या महाकवि कहे जाते हैं, परन्तु “स्वयंभू ने जैन धर्म की प्रतिष्ठा के लिए रामकथा में यत्र-तत्र परिवर्तन कर दिए हैं और कुछ नये प्रसंग जोड़ दिये हैं। पद्म चरित में कथा प्रसंगों की मार्मिकता, चरित्र-चित्रण की पटुता,

स्थल एवं प्रकृति वर्णन की उत्कृष्टता और आलंकारिक तथा हृदयस्पर्शी उक्तियों की प्रचुरता दर्शनीय है। सीता के चरित्र की उदारता दिखाने में कवि ने कमाल ही कर दिया है।” इसके अतिरिक्त स्वयंभू के तीन अन्य ग्रन्थ मिलते हैं, ‘रिद्वेणेमि चरिउ, अरिष्टनेमि चरित्र- हरिवंशपुराण, पंचमि चरिउ- नागकुमार चरित तथा स्वयंभू छन्द आदि।

आचार्य देवसेन इस धर्म के दूसरे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इन्होंने अपने विविध ग्रंथों में जैन धर्म के सिद्धान्तों का विशद विवेचन किया है। इनका मुख्य ग्रंथ ‘लघु नयचक्र’ है। उनके शिष्य माइल्ल धवन का ‘दब्ब सहव पयास’ (द्रव्य स्वभाव प्रकाश) नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। प्रारंभ में यह ग्रंथ ‘दोहाबन्ध’ में था किन्तु बाद में ‘गाथा बन्ध’ में परिवर्तित कर दिया गया। इस संबंध में डॉ.रामकुमार वर्मा कहते हैं कि “इस काल में प्राकृत रचना का आधार पुरानी हिन्दी का रूप अथवा अपभ्रंश से परिवर्तित होता हुआ जन-भाषा का रूप होगा तो पुरानी हिन्दी या अपभ्रंश से उदभूत जन-भाषा इस समय तक यथेष्ट उन्नति कर चुकी होगी, जिससे कि उसमें ग्रंथ रचना हो सके।

अतएव जैन ग्रंथों के आधार पर भी पुरानी हिन्दी का रचना-काल विक्रम की आठवीं शताब्दी से आरम्भ हो गया होगा।” पुष्पदन्त रामकाव्य परम्परा के दूसरे प्रमुख जैन महाकवि हैं। डॉ.बच्चन सिंह उनके संबंध में कहते हैं कि “स्वयंभू में साम्प्रदायिक आग्रह नहीं था, इसलिए रामकथा परम्परा को उन्होंने सुरक्षित रखा। किन्तु पुष्पदन्त का स्वभाव ही अक्खड़ था और उनमें साम्प्रदायिकता का अतिरिक्त आग्रह भी था।” इनके अतिरिक्त जैन कवियों ने लौकिक

कथाओं का आश्रय लेकर जनमानस को शिक्षा देने के लिए अन्य अनेक काव्य लिखे, जिनमें धनपाल कृत ‘भविसयत्त कहा’, कवि रामसिंह कृत ‘पाहुड दोहा’ उल्लेखनीय हैं। आचार्य हेमचन्द्र जैने सन्तों में सर्वाधिक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। इनकी “कविता में ही शताब्दियों की भाषा के नमूने मिलते हैं। इसीलिए उनका ‘सिद्ध हैम’ या ‘हेमचन्द्र शब्दानुशासन’ और ‘कुमारपाल चरित्र’ (जिसमें आठ सर्गों में कुमारपाल का जीवन चरित्र वर्णित है) प्राकृत व्याकरण और भाषा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझे गये हैं।”

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के विकास में जैन कवियों और जैन धर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अपभ्रंश भाषा में जैन साधकों और कवियों ने अनेकानेक ग्रंथ लिखे, जिनका हिन्दी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव केवल भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ही नहीं अपितु अन्य रूपों में भी दिखाई देता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैन साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि “इन चरित-काव्यों के अध्ययन से परवर्ती काल के हिन्दी साहित्य के कथानकों, कथानक-रूढियों, काव्यरूपों, कवि प्रसिद्धियों, छन्दयोजना, वर्णनशैली, वस्तुविन्यास, कवि कौशल आदि की कहानी बहुत स्पष्ट हो जाती है। इसलिए इन काव्यों से हिन्दी साहित्य के विकास के अध्ययन में बहुत महत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है।”

सन्दर्भ:

- 1 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ए टू जेड पब्लिकेशन, इलाहाबाद, सं.2001, पृ.16
- 2 वहीं, पृ.4



- 3 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
डॉ.रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.
2007 पृ.69
- 4 हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ.नगेन्द्र, मयूर
पेपर बैक्स, नोएडा, सं.2001, पृ. 46
- 5 वही, पृ.47
- 6 निबन्धों की दुनिया पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सं.
डॉ.निर्मला जैन, कुसुम बाँठिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,
सं. 2007, पृ. 106
- 7 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
डॉ.रामकुमार वर्मा, पृ.47
- 8 हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ.शिवकुमार
शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1992, पृ.40
- 9 हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 64
- 10 हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ.शिवकुमार
शर्मा, पृ. 41
- 11 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
डॉ.रामकुमार वर्मा, पृ.47
- 12 हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ.बच्चन सिंह,
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2000, पृ.41
- 13 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
डॉ.रामकुमार वर्मा, पृ.85
- 14 हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, डॉ.हजारीप्रसाद
द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1995, पृ. 26